एक रात

हिन्दी ADDA

भुवनेश्वर

एक रात

इस ‘आज’, ‘कल’, ‘अब’, ‘जब’, ‘तब’ से सम्पूर्ण असहयोग कर यदि कोई सोचे क्या, खीज उठे कि इतना सब कुछ निगलकर - सहन कर इस हास्यास्पद बालि ने काल को क्यों बाँधा। इस ‘भूत’, ‘भविष्य’, ‘वर्तमान’ का कार्ड - हाउस क्यों खड़ा किया, हाँ, यदि सोचे क्या, खीज उठे कि कछुए के समान सब कुछ अपने में समेटे वर्तमान कितना शीतल और कठोर है और फिर उसे देखे, उसे क्यों, सृजन के इस अन्ध विपुल

जन-संघात से किसी एक कृति को उठाकर माइक्रोस्कोपिक विज्ञता में पिघला दे; पर उसी को क्यों न देखे। हाँ, उसका - स्त्री का - शरीर, उसका नाम, उसका हर रूपेण सुरक्षित होना देखे और खीज उठे।

पर खीज क्यों उठे? आखिर क्यों? क्या खीज जाना इतना अन्तिम है? क्या उसके बिना ट्रेजडी बरबस एक असुन्दरता से खिलखिला ही उठेगी। यह सच है, वह विज्ञान के अपरिवर्तनशील नियम से द्रव के समान जीवन के साँचे में पड़ते ही ढल गई।, उसने एक पुरुष से प्रेम किया, दूसरे से विवाह किया, एक का हृदय तोड़ दिया, और उसका फोटो चूमा, दूसरे से अधिक - अत्यधिक निकट आकर विकृत कर दिया और यदि उसके ऊपर सुरक्षित काई आँसू बहानेवाला होगा, तो वह अवश्य हँस दिया होगा।

“प्रेमा”, - उस भग्न-हृदय ने रुके हुए कंठ से कहा - ”प्रेम, यह खेल नहीं है। यह...”

“काश! यह खेल ही होता, सच मानो, मैं अपनी हार भुलाकर तुम्हारी विजय पर बधाई देती।” उसकी आत्मा पशु की आत्मा-सी रीति और सम्पूर्ण थी।

प्रेमा से उस भग्न-हृदय ने दृढ़ता से कहा - ’तुम पछताओगी, तुम - ’

“सब कुछ किया है यह भी कर लूँगी।”

जीवन का पावना रत्ती-रत्ती चुकाना होता है, उसकी आत्मा में दार्शनिक की छिछली प्रगल्भता थी। और उसके बाद उसने अपने आँसू दिखाकर छिपाए। उसकी सौगन्ध खाने के बदले में अपनी सौगन्ध खिलाई, ‘रुसवाई’ का अर्थ जानते हुए भी इसका प्रयोग तीन बार किया; पर इस सब पर समय की धूलि जम चुकी थी। अब वह चारों ओर से दृढ़, असम्पूर्णता में सम्पूर्ण, सम्पूर्णता में असम्पूर्ण सम्भ्रान्त रमणी थी, केशव के पत्र एक-एक अपने पति को पढ़वाकर जला दिए और अपनी पहली फेन्सी पर हँसी और पति को बलात् हँसाया। उसका फोटो अपने सोने के कमरे में टाँगा, उसके उपहारों को सहेजा, लापरवाही से डाल दिया फिर सहेजा, फिर उनकी असाधारणता भूलकर चारों ओर से एक कुशल निश्चिन्तता की साँस ली; जैसे उसका सारा जीवन, सारा अच्छा-बुरा मादा कंगारू के शिशु के समान उसके अंग ही में तो है। यह सब, पाँच वर्षों में अनियमित उपक्रम बिखरा हुआ है। इन पाँच वर्षों में केशव उससे दूर, सुदूर होता गया, निकट होने का कोई अर्थ भी न था, पर पाँच वर्ष बाद इस ‘मेरी गो-राउण्ड’ में वह फिर एक-दूसरे के सामने खड़े हो गए और कुछ विचित्र हास्यास्पद जीर्ण और अपंग उनके बीच में था। उसकी कथा इस प्रकार है -

प्रेमा के पति रेलवे के ऑफिसर हैं। प्रायः हेडक्वार्टर से बाहर जाते हैं, प्रेमा उन्हें स्टेशन पहुँचाने जाती है, वह उसकी ओर देखकर मुस्कराते हैं, यह उसकी ओर। वह कुछ गंभीर बात करना चाहते हैं, यह पूछती है, वह कौन है? वह जिसके साथ कुत्ते-ही-कुत्ते हैं? वह उसका हाथ दबाते हैं, वह मुस्कराती है, ऊँची एड़ियों की शिकायत करती है और गाड़ी चल देने पर रूमाल या घबराहट में छाता हिलाती है और उसके बाद अन्यमनस्क तेज-तेज चल देती है। ऐसी ही एक रात वह अकेली नहीं अपने दो वर्षीय शिशु को लेकर पति को विदा करने आई। चलते समय उसने शिशु को लेना चाहा; पर वह न आया और वह वैसे ही बोली 'जाओ, इसे लिये जाओ, पापू से इसका जी ही भर जाए' और वह सचमुच उसे लेकर चल दिए। उनका चपरासी चुटकियाँ बजा-बजाकर पोपले मुँह से उसकी हँसी की नकल कर रहा था और वह डूबकर अपने को सम्पूर्णतः भूलकर रेंगती हुई गाड़ी के साथ भागी। 'माई बूबी' पति ने घबराकर, डरकर, खीजकर कहा - विहेव' उस स्वर में खीज थी या डपट वह निश्चय न कर सकी। और एक मिनट रिक्त रुककर तेज-तेज लौट पड़ी, लौटकर देखा एक कोने में 'हिन्दू पानी' से पीठ अड़ाए होल्डाल पर बैठा है केशव। वह ठिठकी, डरी और फिर खड़े होकर मुस्कराने लगी; पर केशव रेलवे टाइमटेबल इस त्याग से पढ़ रहा है जैसे 'निराला' की कविता हो। वह फिर मुस्कराई। अधिक हाव से और केशव उठा और उठकर रह गया।

प्रेमा ने कहा - 'तो बीमे का काम करते हो?' और छठी बार निरर्थक हँस दी और केशव स्वादहीन, रंगहीन जीवन से कुछ खोज निकालने के प्रयास में उसे और भी उलझा रहा था।

'और', - प्रेमा उच्छ्वास लेकर बोली।

और केशव रिक्त नयनों से उसकी ओर देखकर बाहर अन्धकार में देखने लगा।

'कपूर के यहाँ क्या खाया होगा, कुछ बनवाऊँ?' दिक्कत है, मैं कुछ न खाऊँगी, नहीं तो अब तक बन जाता।

'नहीं, नो-नो।'

'चाय।'

'ऊहूँ हूँ।'

फिर चुप-चुप दोनों इतने निकट आ गए कि प्रेमा उठी अचानक भद्देपन से 'देखूँ' और केशव ने सिगरेट जलाई और पाँच वर्षों को तत्परता से एकत्र कर टटोलने लगा। वह

प्रेमा को भूल-सा गया था। पुरुषोचित शौर्य से बाधित वह भूल ही गया था; पर आज वह सोच रहा था कि वह इससे पहले इसी तरह अचानक वहाँ, जहाँ उसे सींग भली-भाँति समा सकते हैं, इससे पहले क्यों नहीं आया और प्रेमा क्या समय-चक्र के साथ इतनी तेजी से नहीं घूमती? वह बाहर बरामदे में निकल आया। देखा, प्रेमा एक कुर्सी पर बुत बनी बैठी है। अन्धकार में अनिश्चिन्तता में, उसके पद-चाप सुनकर वह उठ खड़ी हुई और हँस दी और यह हँसी केशव की रीढ़ की हड्डी में झनझना उठी, वह चुपचाप उसके निकट गया। शायद वह देखना चाहता था, उसको आत्मा के भीतर बिलकुल उसकी राक बॉटम में देखना चाहता हो, पर यह तो, हमारा खयाल है, प्रेमा ने लाइट जला दी और बिजली के तीव्र एकरस प्रकाश से उसका मुख एकबारगी अप्रतिभ हो गया।

'लो, मेरा बीमा कर लो', वह फिर हँस दी।

और केशव ने तिलमिलाकर सिगरेट को दो बार चूसकर फेंक दिया।

वह दोनों बैठ गए और फिर चुप; पर केशव जैसे अपने आपको अचानक एक क्षण में पा गया।

'कौन जानता था **(**उच्छवास**)** कि हम लोग फिर मिलेंगे इस प्रकार **(**स्टॉप**)**।'

'फिर मिलेंगे'... वह जैसे इन एक-एक शब्दों की सूक्ष्म ध्वनि नहीं, स्थूल शरीर दाँतों से चबाना चाहती है। केशव हताश हो गया।

'प्रेमा' - उसके वर में विचित्रता थी; पर वह इस विचित्रता से चौंकी नहीं, इंट्रीग्ड न हुई।

प्रेमा, तुम्हारे कै बच्चे हैं' - जैसे इसी प्रश्न को करने के लिए शब्दों का दास बना हुआ है केशव। जैसे उसे यह प्रश्न करने का निर्विवाद अधिकार है। प्रेमा ने निर्विकार कहा - 'एक', 'नहीं', जैसे वह साधारण ताश के खेल के ट्रम्पों से इनकार कर रही हो।

'एक नहीं' - वह चौंक उठा, एक विचित्र सन्तोष से, जैसे यह उत्तर पाने के लिए ही उसने यह प्रश्न किया था, फिर बोला - 'क्या तुम सुखी नहीं हो?'

'सुखी' - वह बोली जैसे वह कुछ न समझ रही हो।

'प्रेमा' - अब केशव ढर्रे पर आ रहा था, उसे एक अद्भुत असन्तोष ने आन्दोलित कर दिया। वह कुर्सी को दीवार से अड़ाता था। एक बार उसने हाथ बढ़ाकर उसकी शीतल, गोरी बाँहों को भी छूना चाहा, हाँ, छूना और उसे ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे इसमें कुछ भी

अतिमता नहीं है, कुछ भी; पर प्रेमा चुप थी, शरीर और आत्मा से, यह नहीं कि वह केशव को जान-बूझकर अपने से दूर रखना चाहती थी, यह नहीं कि उसका मन इस विशेष परिस्थिति में व्यर्थ हो रहा था, वह अपनी 'बेबी' तक को भूल गयी थी, जैसे उसके कभी कोई बच्चा न था - जैसे जीवन में कहीं से कहीं लौट आना नितान्त सरल है। इस प्रकार हँसकर बोली - 'तुमने बच्चों की बात क्यों पूछी?

केशव जवाब देने के लिए मुस्कराया; पर तुरन्त ही गंभीर होकर कहने लगा - 'अच्छा यह स्वेटर किसके लिए बुन रही हो? क्या'...

प्रेमा एकदम नाटकीय हो उठी। उसका मुख खिल गया। उसके नेत्रों से सहस्रों फूल खिल गए और एक 'दुत्' करके वह कमरे की ओर लपकी।

केशव ने सहसा उठकर एक क्षण में उसका हाथ पकड़ लिया। उफ्, उसके हाथ कितने शीतल थे और उस क्षण की परिधि में उसने उसे छोड़ दिया। प्रेमा ने जाना, उसे सम्पूर्णतः जान लिया। उसका हाथ पकड़ना और इससे अधिक उसका छोड़ देना।

उसने कमरे में घुसकर द्वार बन्द कर लिये और नितान्त साधारण स्वर में बोली - ''मैं सोती हूँ, तुम भी सोओ। बिस्तरा बिछा लो, नौकर कोई न आएगा।'

केशव - चुप।

प्रेमा - 'सो गए'?

केशव - 'प्रेमा!'

प्रेमा - 'सो जाओ।'

केशव **- (**भावुकता से**)** 'प्रेमा, यहाँ आओ।'

प्रेमा - हम तो सो गए।'

केशव चुप-चुप-चुप जैसे वह सब कुछ प्रासंगिक द्रुतवेग से भूला जा रहा है, जैसे उसके चारों ओर के बन्धन उसे बलात् मुक्त कर देना चाहते हों और कुछ ही दूर एक स्त्री विचित्र-विचित्र; पर उसकी विचित्रता की कोई निश्चित छाया उसके मस्तिष्क तक नहीं पहुँचती थी। उसने कुछ सँभलकर कहा -

'प्रेमा, मुझे नींद नहीं आ रही है, आओ कुछ देर बातें करें।'

‘क्या बातें करें?’ प्रेमा ने सम्पूर्णत: जाग्रत स्वर में कहा - ’कुछ!’

‘कुछ’ - प्रेमा ने यंत्रवत् दुहराया...

‘नहीं’, फिर कुछ रुककर कहा - ’मैंने अपनी साड़ी उतर दी है।’ केशव चुप, उसे चुप रहने का एक कारण मिला। उसका मन इसे खोज रहा हो एक विचित्र निश्चिन्तता से जैसे उसका कोई मुख्य अंग बुझ गया और वह केन्द्र-हीन भार-हीन होकर या तो तप्त हो गया या उसकी जीवन की परिधि को वह पार कर गई - वह भौंचक्का-सा बैठा रहा और फिर कुर्सी पर गिरकर वहीं सो गया।

सवेरे दिन चढ़े नौकर ने प्रेमा को जगाया। खिड़की की ओर से मेम साहब ‘बहू रानी’ की गुहार लगाकर। वह उठी। मलिन श्रमित आँखें सूजी थीं। ओठ विकृत थे, नौकर बोला - वह बाबू सबेरे ही चले गए? सहसा उसने उसकी आँखों में देखकर इसकी तसदीक कर ली। केशव एक पत्र छोड़ गया था, भारी-सा नीला लिफाफा। उसने बार-बार उसे उलटा-पलटा और बाद में वैसा ही सन्दूक में रख दिया। दिन-भर वह कुछ अनमनी-सी रही और एक स्वेटर बुनती रही। शाम को बाहर पति का स्वर सुनकर भी न उठी। पति ने द्वार में घुसते कहा - लीजिए साहबजादे को, देख लीजिए मैंने कुछ छुटा लिया हो और फिर यह सोचकर कि कहीं यह अधिक तीता न हो गया हो, असंगत हँस दिए। नहाकर, कपड़े बदलकर उन्होंने देखा, बच्चा अनमना प्रेमा के पैरों में लिपटा और वह वैसे ही यंत्रचालित स्वेटर के फन्दे डाले जा रही है। उन्होंने कुर्सी के हत्थे पर बैठकर उसे खींचकर कहा - ’क्यों, बहुत नाराज हो’ उसने बाधा न डाली, हुलसी नहीं, सहज अनमनी सूखा-मुख ऊपर उठाकर कहा - ’केशव।’

‘क्या केशव यहाँ आया था?’ उन्होंने सहज भाव; पर किंचित् उतावली से कहा?

‘नही’, उसने अपने पति की गहरी नीली आँखों में देखकर कहा, फिर बोली - ’हाँ मैं उसे रात-भर स्वप्न में देखती रही जैसे वह मर गया हो, हटाओ।’ उसके पति ने बीच में रोके हुए कहा - ’मरने के लिए मैं क्या कम हूँ’, और उन्होंने उसका पूरा मुख दोनों अधर, दोनों कोरें चूम ली; पर आज वह एक अज्ञात रस की प्यासी थी। उसकी आत्मा तृषित-तृषित भारहीन हो, शून्य में उड़ना चाहती थी।

खैर यह तो सब कविता है।

(हंस मासिक, वर्ष **6** , अंक **9** , जून, **1936** **)**